मेरी माँ कहाँ?

लेखिका: कृष्णा सोबती

[प्रकाशन वर्ष : 1949]

दिन के बाद उसने चाँद-सितारे देखे हैं। अब तक वह कहाँ था? नीचे, नीचे, शायद बहुत नीचे...जहाँ की खाई इनसान के ख़ून से भर गई थी। जहाँ उसके हाथ की सफ़ाई बेशुमार गोलियों की बौछार कर रही थी। लेकिन, लेकिन वह नीचे न था। वह तो अपने नए वतन की आज़ादी के लिए लड़ रहा था। वतन के आगे कोई सवाल नहीं, अपना कोई ख़याल नहीं! तो चार दिन से वह कहाँ था? कहाँ नहीं था वह? गुजराँवाला, वज़ीराबाद, लाहौर! वह और मीलों चीरती हुई ट्रक। कितना घूमा है वह? यह सब किसके लिए? वतन के लिए, कौम के लिए और...? और अपने लिए! नहीं, उसे अपने से इतनी मुहब्बत नहीं! क्या लंबी सड़क पर खड़े-खड़े यूनस ख़ाँ दूर-दूर गाँव में आग की लपटें देख रहा है? चीखों की आवाज़ उसके लिए नई नहीं। आग लगने पर चिल्लाने में कोई नयापन नहीं। उसने आग देखी है। आग में जलते बच्चे देखे हैं, औरतें और मर्द देखे हैं। रात-रात भर जल कर सुबह खाक हो गए मुहल्लों में जले लोग देखे हैं! वह देख कर घबराता थोड़े ही है? घबराए क्यों? आज़ादी बिना ख़ून के नहीं मिलती, क्रांति बिना ख़ून के नहीं आती, और, और, इसी क्रांति से तो उसका नन्हा-सा मुल्क पैदा हुआ है! ठीक है। रात-दिन सब एक हो गए। उसकी आँखें उनींदी हैं, लेकिन उसे तो लाहौर पहुंचना है। बिलकुल ठीक मौके पर। एक भी काफ़िर ज़िंदा न रहने पाए। इस हलकी-हलकी सर्द रात में भी ‘काफ़िर’ की बात सोच कर बलोच जवान की आँखें ख़ून मारने लगीं। अचानक जैसे टूटा हुआ क्रम फिर जुड़ गया है। ट्रक फिर चल पड़ी है। तेज रफ़्तार से। सड़क के किनारे-किनारे मौत की गोदी में सिमटे हुए गाँव, लहलहाते खेतों के आस-पास लाशों के ढेर। कभी-कभी दूर से आती हुई ‘अल्ला-हो-अकबर’ और ‘हर-हर महादेव’ की आवाजें। ‘हाय, हाय’, ‘पकड़ो-पकड़ो’, ‘मारो-मारो’ यूनस ख़ाँ यह सब सुन रहा है। बिलकुल चुपचाप। इससे कोई सरोकार नहीं उसे। वह तो देख रहा है अपनी आँखों से एक नई मुग़लिया सल्तनत शानदार, पहले से कहीं ज़्यादा बुलंद...

चाँद नीचे उतरता जा रहा है। दूध-सी चाँदनी नीली पड़ गई है। शायद पृथ्वी का रक्त ऊपर विष बन कर फैल गया है।

‘देखो, ज़रा ठहरो।’ यूनस ख़ाँ का हाथ ब्रेक पर है। यह यह क्या? एक नन्ही-सी, छोटी-सी छाया! छाया? नहीं, रक्त से भीगी सलवार में मूर्च्छित पड़ी एक बच्ची!

बलोच नीचे उतरता है। ज़ख्मी है शायद! मगर वह रुका क्यों? लाशों के लिए कब रुका है वह? पर

यह एक घायल लड़की... उससे क्या? उसने ढेरों के ढेर देखे हैं औरतों के... मगर नहीं, वह उसे ज़रूर उठा लेगा। अगर बच सकी तो... तो... वह ऐसा क्यों कर रहा है यूनस ख़ाँ खुद नहीं समझ पा रहा... लेकिन अब इसे वह न छोड़ सकेगा... काफ़िर है तो क्या?

बड़े-बड़े मज़बूत हाथों में बेहोश लड़की। यूनस ख़ाँ उसे एक सीट पर लिटाता है। बच्ची की आँखें बंद हैं। सिर के काले घने बाल शायद गीले हैं। ख़ून से और, और चेहरे पर...? पीले चेहरे पर...रक्त के छींटे।

यूनस ख़ाँ की उंगलियां बच्ची के बालों में हैं और बालों का रक्त उसके हाथों में... शायद सहलाने के प्रयत्न में! पर नहीं, यूनस ख़ाँ इतना भावुक कभी नहीं था। इतना रहम, इतनी दया उसके हाथों में कहाँ से उतर आई है? वह ख़ुद नहीं जानता। मूर्च्छित बच्ची ही क्या जानती है कि जिन हाथों ने उसके भाई को मार कर उस पर प्रहार किया था उन्हीं के सहधर्मी हाथ उसे सहला रहे हैं!

यूनस ख़ाँ के हाथों में बच्ची...और उसकी हिंसक आँखें नहीं, उसकी आर्द्र आँखें देखती हैं दूर कोयटे में एक सर्द, बिलकुल सर्द शाम में उसके हाथों में बारह साल की ख़ूबसूरत बहिन नूरन का जिस्म, जिसे छोड़ कर उसकी बेवा अम्मी ने आँखें मूँद ली थीं।

सनसनाती हवा में क़ब्रिस्तान में उसकी फूल-सी बहिन मौत के दामन में हमेशा-हमेशा के लिए दुनिया से बेख़बर... और उस पुरानी याद में कांपता हुआ यूनस ख़ाँ का दिल-दिमाग़।
आज उसी तरह, बिलकुल उसी तरह उसके हाथों में... मगर कहाँ है वह यूनस ख़ाँ जो कत्ले-आम को दीन और ईमान समझ कर चार दिन से ख़ून की होती खेलता रहा है... कहाँ है? कहाँ है?
यूनस ख़ाँ महसूस कर रहा है कि वह हिल रहा है, वह डोल रहा है। वह कब तक सोचता जाएगा। उसे चलना चाहिए, बच्ची के ज़ख्म !...और फिर, एक बार फिर थपथपा कर, आदर से, भीगी-भीगी ममता से बच्ची को लिटा यूनस ख़ाँ सैनिक की तेज़ी से ट्रक स्टार्ट करता है। अचानक सूझ जानेवाले कर्तव्य की पुकार में। उसे पहले चल देना चाहिए था। हो सकता है यह बच्ची बच जाए... उसके ज़ख्मों की मरहम-पट्टी। तेज़, तेज़ और तेज़! ट्रक भागी जा रही है। दिमाग़ सोच रहा है वह क्या है? इसी एक के लिए क्यों? हज़ारों मर चुके हैं। यह तो लेने का देना है। वतन की लड़ाई जो है! दिल की आवाज़ है चुप रहो... इन मासूम बच्चों की इन क़ुरबानियों का आज़ादी के ख़ून से क्या ताल्लुक? और नन्ही बच्ची बेहोश, बेख़बर...
लाहौर आनेवाला है। यह सड़क के साथ-साथ बिछी हुई रेल की पटरियां। शाहदरा और अब ट्रक लाहौर की सड़कों पर है। कहाँ ले जाएगा वह? मेयो हॉस्पिटल या सर गंगाराम?...गंगाराम क्यों? यूनस ख़ाँ चौंकता है। वह क्या उसे लौटाने जा रहा है? नहीं, नहीं, उसे अपने पास रखेगा। ट्रक मेयो हॉस्पिटल के सामने जा रुकती है।
और कुछ क्षण बाद बलोच चिंता के स्वर में डॉक्टर से कह रहा है,‘डॉक्टर, जैसे भी हो, ठीक कर दो... इसे सही सलामत चाहता हूं मैं!’ और फिर उत्तेजित हो कर,‘डॉक्टर, डॉक्टर...’ उसकी आवाज़ संयत नहीं रहती।
‘हाँ, हाँ, पूरी कोशिश करेंगे इसे ठीक करने की।’
बच्ची हॉस्पिटल में पड़ी है। यूनस ख़ाँ अपनी डयूटी पर है, मगर कुछ अनमना-सा हैरान फ़िकरमंद। पेट्रोल कर रहा है।
लाहौर की बड़ी-बड़ी सड़कों पर। कहीं-कहीं रात की लगी हुई आग से धुआं निकल रहा है। कभी-कभी डरे हुए, सहमे हुए लोगों की टोलियां कुछ फौज़ियों के साथ नज़र आती हैं। कहीं उसके अपने साथी शोहदों के टोलों को इशारा करके हँस रहे हैं। कहीं कूड़ा-करकट की तरह आदमियों की लाशें पड़ी हैं। कहीं उजाड़ पड़ी सड़कों पर नंगी औरतें, बीच-बीच में नारे-नारे, और ऊँचे! और यूनस ख़ाँ, जिसके हाथ कल तक ख़ूब चल रहे थे, आज शिथिल हैं। शाम को लौटते हुए जल्दी-जल्दी क़दम भरता है। वह अस्पताल नहीं, जैसे घर जा रहा है।
एक अपरिचित बच्ची के लिए क्यों घबराहट है उसे? वह लड़की मुसलमान नहीं, हिंदू है, हिंदू है। दरवाज़े से पलंग तक जाना उसे दूर, बहुत दूर जाना लग रहा है। लंबे-लंबे डग।

लोहे के पलंग पर बच्ची लेटी है। सफ़ेद पट्टियों से बंधा सिर। किसी भयानक दृश्य की कल्पना से आँखें अब भी बंद हैं। सुंदर-से भोले मुख पर डर की भयावनी छाया...
यूनस ख़ाँ कैसे बुलाए क्या कहे? 'नूरन' नाम होंठों पर आकर रुकता है। हाथ आगे बढ़ते हैं। छोटे-से घायल सिर का स्पर्श, जिस कोमलता से उसकी उंगलियां छू रही हैं उतनी ही भारी आवाज़ उसके गले में रुक गई है।
अचानक बच्ची हिलती है। आहत-से स्वर में, जैसे बेहोशी में बड़बड़ाती है
'कैंप, कैंप...कैंप आ गया। भागो...भागो...भागो...'
'कुछ नहीं, कुछ नहीं देखो, आँखें खोलो...'
'आग, आग...वह गोली...मिलटरी...'
बच्ची उसे पास झुके देखती है और चीख मारती है...
'डॉक्टर, डॉक्टर...डॉक्टर, इसे अच्छा कर दो।'
डॉक्टर अनुभवी आँखों से देख कर कहता है,'तुमसे डरती है। यह काफ़िर है, इसीलिए।'
काफ़िर...यूनस ख़ाँ के कान झनझना रहे हैं, काफ़िर...काफ़िर...क्यों बचाया जाए इसे? काफ़िर?...कुछ नहीं...मैं इसे अपने पास रखूंगा!
इसी तरह बीत गईं वे ख़ूनी रातें। यूनस ख़ाँ विचलित-सा अपनी डयूटी पर और बच्ची हॉस्पिटल में। एक दिन। बच्ची अच्छी होने को आई। यूनस ख़ाँ आज उसे ले जाएगा। डयूटी से लौटने के बाद वह उस वॉर्ड में आ खड़ा हुआ।
बच्ची बड़ी-बड़ी आँखों से देखती है। उसकी आँखों में डर है, घृणा है और, और, आशंका है। यूनस ख़ाँ बच्ची का सिर सहलाता है, बच्ची कांप जाती है! उसे लगता है कि हाथ गला दबोच देंगे। बच्ची सहम कर पलकें मूँद लेती है! कुछ समझ नहीं पाती कहाँ है वह? और यह बलोच?...वह भयानक रात! और उसका भाई! एक झटके के साथ उसे याद आता है कि भाई की गर्दन गंड़ासे से दूर जा पड़ी थी!
यूनस ख़ाँ देखता है और धीमे से कहता है,'अच्छी हो न! अब घर चलेंगे!'
बच्ची कांप कर सिर हिलाती है,'नहीं-नहीं, घर...घर कहाँ है! मुझे तुम मार डालोगे।'
यूनस ख़ाँ देखना चाहता था नूरन, लेकिन यह नूरन नहीं, कोई अनजान है जो उसे देखते ही भय से सिकुड़ जाती है।
बच्ची सहमी-सी रुक-रुक कर कहती है,'घर नहीं, मुझे कैंप में भेज दो। यहाँ मुझे मार देंगे...मुझे मार देंगे...'
यूनस ख़ाँ की पलकें झुक जाती हैं। उनके नीचे सैनिक की क्रूरता नहीं, बल नहीं, अधिकार नहीं। उनके नीचे है एक असह्य भाव, एक विवशता...बेबसी।

बलोच करुणा से बच्ची को देखता है। कौन बचा होगा इसका? वह इसे पास रखेगा। बलोच किसी अनजान स्नेह में भीगा जा रहा है...

बच्ची को एक बार मुस्कराते हुए थपथपाता है,‘चलो चलो, कोई फ़िक्र नहीं, हम तुम्हारा अपना है...’

ट्रक में यूनस ख़ाँ के साथ बैठ कर बच्ची सोचती है, बलोच कहीं अकेले में जा कर उसे ज़रूर मार देनेवाला है...गोली से, छुरे से! बच्ची बलोच का हाथ पकड़ लेती है,‘ख़ान, मुझे मत मारना...मारना मत...’ उसका सफ़ेद पड़ा चेहरा बता रहा है कि वह डर रही है।

ख़ान बच्ची के सिर पर हाथ रखे कहता है,‘नहीं-नहीं, कोई डर नहीं...कोई डर नहीं...तुम हमारा सगा के माफ़िक है...’

एकाएक लड़की पहले ख़ान का मुँह नोचने लगती है फिर रो-रो कर कहती है,‘मुझे कैंप में छोड़ दो, छोड़ दो मुझे।’

ख़ान ने हमदर्दी से समझाया,‘सब्र करो, रोओ नहीं...तुम हमारा बच्चा बनके रहेगा। हमारे पास।’

‘नहीं...’ लड़की ख़ान की छाती पर मुट्ठियाँ मारने लगी,‘तुम मुसलमान हो...तुम...’

एकाएक लड़की नफ़रत से चीखने लगी,‘मेरी माँ कहाँ है! मेरे भाई कहाँ हैं! मेरी बहिन कहाँ...